पेरिस और दुनिया

सर्वमित्रा सुरजन

13 नवबंर की रात फ्रांस की राजधानी पेरिस में हुए सिलसिलेवार आतंकी हमलों से न केवल फ्रांसीसी जनता बल्कि पूरी दुनिया दहल गई है। पेरिस के नेशनल स्टेडियम में जब आत्मघाती हमला हुआ, उस वक्त वहां जर्मन व फ्रांस का फुटबाल मैच चल रहा था और राष्ट्रपति ओलांद भीतर मौजूद थे। ऐसा लगता है कि आतंकी केवल निर्दोष लोगों की जान लेकर दहशत नहीं फैलाना चाहते थे, बल्कि विदेशी नागरिक, सैलानी और सबसे बढ़कर सरकार को भी अपना निशाना बनाना चाहते थे, ताकि आतंक का प्रभाव देर तक और दूर तक कायम रहे। इस साल की शुरुआत में ही फ्रांसीसी पत्रिका शार्ली अब्दो के कार्यालय पर आतंकियों ने हमला किया था। ताजा हमलों की जिम्मेदारी आतंक का पर्याय बन चुके आईएसआईएस ने ली है। विशेषज्ञों का मानना है कि सीरिया में आईएसआईएस के खिलाफ हमलों में फ्रांस निरंतर मदद कर रहा है, इसलिए आतंकियों ने उसे निशाना बनाया है। पेरिस पर हुए आतंकी हमले की तुलना 26 नवंबर को हुए मुंबई हमलों से की जा रही है। भीड़भाड़ वाले छह स्थानों पर धमाके, हमलों की सुनियोजित तैयारी, आतंकियों का प्रशिक्षण और हमले का तरीका, ऐसी कुछ समानताएं भी पेश की गई हैं। यह भी कहा जा रहा है कि अगर मुंबई हमलों के गुनहगारों को सजा मिल गई होती, तो पेरिस में ऐसा हमला नहीं होता। गुनहगार कहीं का भी हो, उसे सजा मिलनी ही चाहिए। यहां यह याद रखने की जरूरत है कि अमरीका ने ओसामा बिन लादेन को गुनहगार करार देकर उसे खत्म कर दिया, लेकिन दुनिया से आतंक नहीं मिटा, रूप और रंग बदलकर अपना कहर बरपा ही रहा है।

> एक इंसान की पीड़ा से दूसरा व्यथित होता है, तो मानना चाहिए कि दुनिया में इंसानियत बाकी है और आतंकियों के दिन लद चुके हैं। लेकिन खेद है कि तस्वीर असल में ऐसी

पेरिस में सौ से अधिक निर्दोषों की मौत पर पूरी दुनिया में दुख प्रकट किया जा रहा है। एक बार फिर पुरजोर तरीके से यह बात कही जा रही है कि आतंकियों को मुंहतोड़ जवाब देना चाहिए और सभी देशों को मिलकर यह काम करना चाहिए। यह भावना, आतंक के खिलाफ लड़ने की यह प्रतिबद्धता सिर-माथे पर। मुश्किल यह है कि विश्व के देशों में एका नहीं है और इसलिए आतंकियों को अपने मंसूबों को अंजाम देने में कोई परेशानी नहीं हो रही। पेरिस हमलों की कड़े शब्दों में निंदा हो रही है, होनी भी चाहिए। अकाल मृत्यु सौ व्यक्तियों की हो या एक की, उस पर दर्द की लहर उठना ही चाहिए, वर्ना इंसान कहलाने का क्या हक। पेरिस हमलों के बाद से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया में पेरिस और यूरोप के दूसरे देशों में बीते समय में हुए हमलों की याद दिलाई जा रही है। दुनिया भर में लोग पेरिस में मारे गए लोगों को कैसे नम आंखों से श्रद्धांजलि दे रहे हैं, फूलों और मोमबत्ती के साथ अपनी संवेदनाएं प्रकट कर रहे हैं, इसकी तस्वीरें लगातार दिखाई जा रही हैं। एक इंसान की पीड़ा से दूसरा व्यथित होता है, तो मानना चाहिए कि दुनिया में इंसानियत बाकी है और आतंकियों के दिन लद चुके हैं। लेकिन खेद है कि तस्वीर असल में ऐसी नहीं है। ज्यादा पीछे न जाएं, केवल 215 के आंकड़े निकाल कर देखा जा सकता है कि आईएसआईएस ने सीरिया, इराक आदि में, बोको हराम ने नाइजीरिया व अन्य अफ्रीकी देशों में, लश्करे तैयबा ने भारतीय उपमहाद्वीप में कितने आतंकी हमले किए हैं। आए दिन कभी बगदाद में, कभी काबुल में, कभी त्रिपोली में, कभी नाइजर में आत्मघाती हमलों की सूचना आती है। मौत का आंकड़ा कभी इकाई में होता है, कभी दहाई में। ये वो हमले हैं जो आतंकी संगठन कर रहे हैं। इसके अलावा दुनिया की बड़ी आबादी उस दहशतगर्दी की चपेट में है, जो कुछ देशों की लोकतांत्रिक सरकारों के कारण निजी हितों के लिए फैलाई जा रही है। फिलीस्तीन और इजराइल में निरंतर हिंसक संघर्ष चल ही रहा है। इराक खोखला हो चुका है और सीरिया में गृहयुद्ध के कारण लाखों लोग बेघर हो चुके हैं, अफगानिस्तान बारूद के ढेर पर ही बैठा है। इन देशों में एक पूरी पीढ़ी बर्बाद हो चुकी है और नयी पीढ़ी के लिए भविष्य अंधी सुरंग के अलावा कुछ नहीं है। अपनी जमीन से बेदखल बच्चे कहां पनपेंगे और किस दशा को प्राप्त होंगे, यह सामान्य बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है। इन हजारों-लाखों लोगों के प्राण नहीं निकले, पर इन्हें जिंदा भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जीवन जीने के लिए जिस आशा की जरूरत होती है, वो इनके पास है ही नहीं। इनमें से बहुतों की चमड़ी गोरी नहीं है, ये विश्व व्यापार में लाभ पाने वालों की तरफ के नहीं हैं, इनकी सभ्यता की परिभाषा पश्चिम से अलग है, शिक्षा, संस्कृति, परंपरा भी सबकी अलग-अलग है, ये हर महीने फादर्स, मदर्स, डाटर्स, फ्रेंडशिप डे जैसे रिश्तों पर आधारित दिवस नहीं मनाते, बल्कि तरसते हैं कि इनके मां-बाप, बच्चे, दोस्त-रिश्तेदार जिंदा रहें। लेकिन इनके लिए व्यापक स्तर पर शोक प्रकट करने की दो पंक्तियां भी नहीं पढ़ी जातीं, आंसू निकलना तो दूर की बात है। इनके लिए ह्यूमन्स डे मनाने जैसी कोई पहल भी बाजार की तरफ से नहीं हुई। शुरु हो तो मोमबत्तियों और फूलों का व्यापार खूब चल निकले। फिर शायद हथियार कम बिकें और आतंक का कारोबार सिमटे। ■